# 7 धर्मवीर भारती

## लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म–**25 दिसम्बर, सन् 1926 ई०।
- **जन्म-स्थान–**इलाहाबाद (उ०प्र०)।
- **मृत्यु–**4 सितम्बर, सन् 1997 ई०।
- **सम्पादन–**'संगम' तथा 'धर्मयुग'।
- **भाषा–**परिमार्जित खड़ीबोली।
- **हिन्दी साहित्य में स्थान–**कथाकार, नाटककार, निबन्धकार एवं कवि के रूप में।

**जीवन-परिचय–**धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसम्बर, सन् 1926 ई० को इलाहाबाद में हुआ था। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम० ए० और पी-एच० डी० की उपाधियाँ लीं। इन्होंने कुछ वर्षों तक यहीं से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक पत्र 'संगम' का भी सम्पादन किया। कुछ समय तक ये इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक भी रहे। सन् 1959 ई० से 1987 ई० तक ये मुम्बई से प्रकाशित होनेवाले हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र 'धर्मयुग' के सम्पादक रहे। सन् 1972 ई० में भारतीजी को 'पद्मश्री' की उपाधि, भारत-भारती सम्मान (1989), महाराष्ट्र गौरव (1990), व्यास सम्मान (1994), हल्दीघाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार से अलंकृत किया गया। 4 सितम्बर, 1997 ई० को यह कलम का सिपाही इस असार संसार से विदा लेकर परलोकवासी हो गया।

**साहित्यिक परिचय–**धर्मवीर भारती प्रतिभाशाली कवि, कथाकार व नाटककार थे। इनकी कविताओं में रागतत्त्व की रमणीयता के साथ बौद्धिक उत्कर्ष की आभा दर्शनीय है। कहानियों और उपन्यासों में इन्होंने सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं को उठाते हुए बड़े ही जीवन्त चरित्र प्रस्तुत किये हैं। साथ ही समाज की विद्रूपता पर व्यंग्य करने की विलक्षण क्षमता भारतीजी में रही। कहानी, निबन्ध, एकांकी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, सम्पादन व काव्य-सृजन के क्षेत्र में इन्होंने अपनी विलक्षण सृजन प्रतिभा का परिचय दिया। वस्तुतः साहित्य की जिस विधा का भी भारतीजी ने स्पर्श किया, वही विधा इनका स्पर्श पाकर धन्य हो गयी। 'गुनाहों का देवता' जैसा सशक्त उपन्यास लिखकर भारतीजी अमर हो गये। इस उपन्यास पर बनी फिल्म भारतीय समाज में अधिक लोकप्रिय हुई।

**प्रमुख कृतियाँ–**धर्मवीर भारती की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं–

**कहानी संग्रह–**मुर्दों का गाँव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाँद और टूटे हुए लोग, बन्द गली का आखिरी मकान, साँस की कलम से। **काव्य रचनाएँ–**ठण्डा लोहा, सात गीत, वर्ष, कनुप्रिया, सपना अभी-भी, आद्यान्त। **उपन्यास–**गुनाहों का देवता, सूरज का सातवाँ घोड़ा, ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ व समापन। **निबन्ध–**ठेले पर हिमालय, पश्यंती, कहनी–अनकहनी। **कहानियाँ–**अनकही, नदी प्यासी थी, नीली झील, मानव मूल्य और साहित्य। **नाटक और एकांकी–**'नदी प्यासी थी' इनका चर्चित नाटक है। 'नीली झील' संग्रह में इनकी एकांकियाँ संकलित हैं। **पद्य नाटक–**अंधा युग। **आलोचना–**प्रगतिवाद : एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य। इसके अतिरिक्त विश्व की कुछ प्रसिद्ध भाषाओं की कविताओं का हिन्दी अनुवाद भी **'देशान्तर'** नाम से प्रकाशित हुआ है।

**भाषा-शैली–**भारतीजी की भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित खड़ीबोली है। इनकी भाषा में सरलता, सजीवता और आत्मीयता का पुट है तथा देशज, तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा में गति और बोधगम्यता आ गयी है। विषय और विचार के अनुकूल भारतीजी की रचनाओं में भावात्मक, समीक्षात्मक, वर्णनात्मक, चित्रात्मक शैलियों के प्रयोग हुए हैं।

प्रस्तुत निबन्ध **'ठेले पर हिमालय'** एक यात्रा-वृत्त है, जिसमें हिमालय की रमणीय शोभा का वर्णन है। शीर्षक की विचित्रता के साथ नैनीताल से कौसानी तक की यात्रा का वर्णन कम रोचक नहीं है और शैली में नवीनता इसका मुख्य कारण है। ●●●

# ठेले पर हिमालय

'ठेले पर हिमालय'—खासा दिलचस्प शीर्षक है न। और यकीन कीजिए, इसे बिल्कुल ढूँढ़ना नहीं पड़ा। बैठे-बिठाये मिल गया। अभी कल की बात है, एक पान की दुकान पर मैं अपने एक गुरुजन उपन्यासकार मित्र के साथ खड़ा था कि ठेले पर बर्फ की सिलें लादे हुए बर्फ वाला आया। ठण्डे, चिकने, चमकते बर्फ से भाप उड़ रही थी। मेरे मित्र का जन्म-स्थान अल्मोड़ा है, वे क्षण भर उस बर्फ को देखते रहे, उठती हुई भाप में खोये रहे और खोये-खोये से ही बोले, ''यही बर्फ तो हिमालय की शोभा है।'' और तत्काल शीर्षक मेरे मन में कौंध गया, 'ठेले पर हिमालय'। पर आपको इसलिए बता रहा हूँ कि अगर आप नये कवि हों तो भाई, इसे ले जायँ और इस शीर्षक पर दो-तीन सौ पंक्तियाँ बेडौल-बेतुकी लिख डालें—शीर्षक मौजूँ है, और अगर नयी कविता से नाराज हों, सुललित गीतकार हों तो भी गुंजाइश है, इस बर्फ को डाँटें, ''उतर आओ। ऊँचे शिखर पर बन्दरों की तरह क्यों चढ़े बैठे हो? ओ नये कवियो! ठेले पर लादो। पान की दुकानों पर बिको।''

ये तमाम बातें उसी समय मेरे मन में आयीं और मैंने अपने गुरुजन मित्र को बतायी भी। वे हँसे भी, पर मुझे लगा कि वह बर्फ कहीं उनके मन को खरोंच गयी है और ईमान की बात यह है कि जिसने 50 मील दूर से भी बादलों के बीच नीचे आकाश में हिमालय की शिखर-रेखा को चाँद-तारों से बात करते देखा है, चाँदनी में उजली बर्फ को धुंध के हल्के नीले जाल में दूधिया समुद्र की तरह मचलते और जगमगाते देखा है; उसके मन पर हिमालय की बर्फ एक ऐसी खरोंच छोड़ जाती है, जो हर बार याद आने पर पिरा उठती है। मैं जानता हूँ, क्योंकि वह बर्फ मैंने भी देखी है।

सच तो यह है कि सिर्फ बर्फ को बहुत निकट से देख पाने के लिए ही हम लोग कौसानी गये थे। नैनीताल से रानीखेत और रानीखेत से मझकाली के भयानक मोड़ों को पार करते हुए कोसी। कोसी से एक सड़क अल्मोड़ा चली जाती है, दूसरी कौसानी। कितना कष्टप्रद, कितना सूखा और कितना कुरूप है वह रास्ता। पानी का कहीं नाम-निशान नहीं, सूखे भूरे पहाड़, हरियाली का नाम नहीं। ढालों को काटकर बनाये हुए टेढ़े-मेढ़े खेत, जो थोड़े-से हों तो शायद अच्छे भी लगें, पर उनका एकरस सिलसिला बिल्कुल शैतान की आँत मालूम पड़ता है। फिर मझकाली के टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर अल्मोड़े का एक नौसिखिया और लापरवाह ड्राइवर, जिसने बस के तमाम मुसाफिरों की ऐसी हालत कर दी कि जब हम कोसी पहुँचे तो सभी मुसाफिरों के चेहरे पीले पड़ चुके थे। कौसानी जानेवाले सिर्फ हम दो थे, वहीं उतर गये। बस अल्मोड़ा चली गयी। सामने के एक टीन के शेड में काठ की बेंच पर बैठकर हम वक्त काटते रहे। तबियत सुस्त थी और मौसम में उमस थी। दो घण्टे बाद दूसरी लारी आकर रुकी और जब उसमें से प्रसन्नवदन शुक्लजी को उतरते देखा तो हम लोगों की जान में जान आयी। शुक्लजी जैसा सफर का साथी पिछले जन्म के पुण्यों से ही मिलता है। उन्होंने हमें कौसानी आने का उत्साह दिलाया था और खुद तो कभी उनके चेहरे पर थकान या सुस्ती दिखी ही नहीं, पर उन्हें देखते ही हमारी भी सारी थकान काफूर हो जाया करती थी।

पर शुक्लजी के साथ यह नयी मूर्ति कौन है? लम्बा-दुबला शरीर, पतला-साँवला चेहरा, एमिल जोला-सी दाढ़ी, ढीला-ढाला पतलून, कन्धे पर पड़ी हुई ऊनी जर्किन, बगल में लटकता हुआ जाने थर्मस या कैमरा या बाइनाकुलर। और खासी अटपटी चाल थी बाबू साहब की। यह पतला-दुबला मुझी जैसा सींकिया शरीर और उस पर आपका झूमते हुए आना.....मेरे चेहरे पर निरन्तर घनी होती हुई उत्सुकता को ताड़कर शुक्लजी ने कहा—''हमारे शहर के मशहूर चित्रकार हैं सेन, अकादमी से इनकी कृतियों पर पुरस्कार मिला है। उसी रुपये से घूमकर छुट्टियाँ बिता रहे हैं।'' थोड़ी ही देर में हम लोगों के साथ सेन घुल-मिल गया, कितना मीठा था हृदय से वह। वैसे उसके करतब आगे चलकर देखने में आये।

कोसी से बस चली तो सारा दृश्य बदल गया। सुडौल पत्थरों पर कल-कल करती हुई कोसी, किनारे के छोटे-छोटे सुन्दर गाँव और हरे मखमली खेत। कितनी सुन्दर है सोमेश्वर की घाटी। हरी-भरी। एक के बाद एक बस स्टेशन पड़ते थे, छोटे-छोटे पहाड़ी डाकखाने, चाय की दुकानें और कभी-कभी कोसी या उसमें गिरने वाले नदी-नालों पर बने हुए पुल। कहीं-कहीं सड़क निर्जन चीड़ के जंगलों से गुजरती थी। टेढ़ी-मेढ़ी ऊपर-नीचे रेंगती हुई कंकड़ीली पीठ वाले अजगर-सी सड़क पर धीरे-धीरे बस चली जा रही थी। रास्ता सुहावना था और उस थकावट के बाद उसका सुहावनापन हमको और भी तन्द्रालस बना रहा था। पर ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रही थी, त्यों-त्यों हमारे मन में एक अजीब-सी निराशा छाती जा रही थी, अब तो हम लोग कौसानी के नजदीक हैं, कोसी से 18 मील चले आये, कौसानी सिर्फ छह मील है, पर कहाँ गया वह अतुलित सौन्दर्य, वह जादू, जो कौसानी के बारे में सुना जाता था। आते समय मेरे एक सहयोगी ने कहा था कि कश्मीर के मुकाबले में उन्हें कौसानी ने अधिक मोहा है, गाँधीजी ने यहीं अनासक्तियोग लिखा था और कहा था स्विट्जरलैण्ड का आभास कौसानी में ही होता है। ये नदी, घाटी, खेत, गाँव सुन्दर हैं, किन्तु इतनी प्रशंसा के योग्य तो नहीं ही हैं। हम कभी-कभी अपना संशय शुक्लजी से व्यक्त भी करने लगे और ज्यों-ज्यों कौसानी नजदीक आती गयी, त्यों-त्यों अधैर्य, फिर असन्तोष और अन्त में तो क्षोभ हमारे चेहरे पर झलक आया। शुक्लजी की क्या प्रतिक्रिया थी, हमारी इन भावनाओं पर, यह स्पष्ट नहीं हो पाया, क्योंकि वे बिल्कुल चुप थे। सहसा बस ने एक बहुत लम्बा मोड़ लिया और ढाल पर चढ़ने लगी।

सोमेश्वर की घाटी के उत्तर में ऊँची पर्वतमाला है, उसी पर, बिल्कुल शिखर पर कौसानी बसा हुआ है। कौसानी से दूसरी ओर फिर ढाल शुरू हो जाती है। कौसानी के अड्डे पर जाकर बस रुकी। छोटा-सा, बिल्कुल उजड़ा-सा गाँव और बर्फ का तो कहीं नाम-निशान नहीं। बिल्कुल ठगे गये हम लोग। कितना खिन्न था मैं। अनखाते हुए बस से उतरा कि जहाँ था वहीं पत्थर की मूर्ति-सा स्तब्ध खड़ा रह गया। कितना अपार सौन्दर्य बिखरा था, सामने की घाटी में। इस कौसानी की पर्वतमाला ने अपने अंचल में यह जो कत्यूर की रंग-बिरंगी घाटी छिपा रखी है; इसमें किन्नर और यक्ष ही तो वास करते होंगे। पचासों मील चौड़ी यह घाटी, हरे मखमली कालीनों जैसे खेत, सुन्दर गेरू की शिलाएँ काटकर बने हुए लाल-लाल रास्ते, जिनके किनारे-किनारे सफेद-सफेद पत्थरों की कतार और इधर-उधर से आकर आपस में उलझ जानेवाली बेलों की लड़ियों-सी नदियाँ। मन में बेसाख्ता यही आया कि इन बेलों की लड़ियों को उठाकर कलाई में लपेट लूँ, आँखों से लगा लूँ। अकस्मात् हम एक-दूसरे लोक में चले आये थे। इतना सुकुमार, इतना सुन्दर, इतना सजा हुआ और इतना निष्कलंक कि लगा इस धरती पर तो जूते उतारकर, पाँव पोंछकर आगे बढ़ना चाहिए। धीरे-धीरे मेरी निगाहों ने इस घाटी को पार किया और जहाँ ये हरे खेत और नदियाँ और वन, क्षितिज के धुँधलेपन में, नीले कोहरे में धुल जाते थे, वहाँ पर कुछ छोटे पर्वतों का आभास, अनुभव किया, उसके बाद बादल थे और फिर कुछ नहीं। कुछ देर तक उन बादलों में निगाह भटकती रही कि अकस्मात् फिर एक हल्का-सा विस्मय का धक्का मन को लगा। इन धीरे-धीरे खिसकते हुए बादलों में यह कौन चीज है, जो अटल है। यह छोटा-सा बादल के टुकड़े-सा,.....और कैसा अजब रंग है इसका, न सफेद, न रूपहला, न हल्का नीला.....पर तीनों का आभास देता हुआ। यह है क्या? बर्फ तो नहीं है। हाँ जी। बर्फ नहीं है तो क्या है? और अकस्मात् बिजली-सा यह विचार मन में कौंधा कि इसी कत्यूर घाटी के पार वह नगाधिराज, पर्वत सम्राट्, हिमालय है, इन बादलों ने उसे ढाँक रखा है, वैसे वह क्या सामने है, उसका एक कोई छोटा-सा बाल-स्वभाव वाला शिखर बादलों की खिड़की से झाँक रहा है। मैं हर्षातिरेक से चीख उठा 'बरफ। वह देखा।' शुक्लजी, सेन, सभी ने देखा, पर अकस्मात् वह फिर लुप्त हो गया। लगा, उसे बाल-शिखर जान किसी ने अन्दर खींच लिया। खिड़की से झाँक रहा है, कहीं गिर न पड़े।

पर उस एक क्षण के हिमदर्शन ने हम में जाने क्या भर दिया था। सारी खिन्नता, निराशा, थकावट—सब छू-मन्तर हो गयी। हम सब आकुल हो उठे। अभी ये बादल छँट जायँगे और फिर हिमालय हमारे सामने खड़ा होगा—निरावृत्त....असीम सौन्दर्यराशि हमारे सामने अभी-अभी अपना घूँघट धीरे से खिसका देगी और.....और तब? और तब? सचमुच मेरा दिल बुरी तरह धड़क रहा था। शुक्लजी शान्त थे, केवल मेरी ओर देखकर कभी-कभी मुस्कुरा देते थे, जिसका अभिप्राय था, 'इतने

अधीर थे, कौसानी आयी भी नहीं और मुँह लटका लिया। अब समझे यहाँ का जादू।' डाक बँगले के खानसामे ने बताया—'आप लोग बड़े खुशकिस्मत हैं साहब। 14 ट्युरिस्ट आकर हफ्तों भर पड़े रहे, बर्फ नहीं दिखी। आज तो आप के आते ही आसार खुलने के हो रहे हैं।'

सामान रख दिया गया। पर मैं, मेरी पत्नी, सेन, शुक्लजी सभी बिना चाय पिये सामने के बरामदे में बैठे रहे और एकटक सामने देखते रहे। बादल धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे और एक-एक कर नये-नये शिखरों की हिम-रेखाएँ अनावृत्त हो रही थीं। और फिर सब खुल गया। बायीं ओर से शुरू होकर दायीं ओर गहरे शून्य में धँसती जाती हुई हिमशिखरों की ऊबड़-खाबड़, रहस्यमयी, रोमांचक शृंखला।

हमारे मन में उस समय क्या भावनाएँ उठ रही थीं, यह अगर बता पाता तो यह खरोंच, यह पीर ही क्यों रह गयी होती? सिर्फ एक धुँधला-सा संवेदन इसका अवश्य था कि जैसे बर्फ के सिल के सामने खड़े होने पर मुँह पर ठण्डी-ठण्डी भाप लगती है, वैसे ही हिमालय की शीतलता माथे को छू रही है और सारे संघर्ष, सारे अन्तर्द्वन्द्व, सारे ताप जैसे नष्ट हो रहे हैं। क्यों पुराने साधकों ने दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों को ताप कहा था और उसे नष्ट करने के लिए वे क्यों हिमालय जाते थे, यह पहली बार मेरी समझ में आ रहा था। और अकस्मात् एक दूसरा तथ्य मेरे मन के क्षितिज पर उदित हुआ। कितनी, कितनी पुरानी है यह हिमराशि। जाने किस आदिम काल से यह शाश्वत, अविनाशी हिम इन शिखरों पर जमा हुआ। कुछ विदेशियों ने इसीलिए इस हिमालय की बर्फ को कहा है—चिरन्तन हिम।

सूरज ढल रहा था। और सुदूर शिखरों पर दर्रे, ग्लेशियर, जल, घाटियों का क्षीण आभास मिलने लगा था। आतंकित मन से मैंने यह सोचा था कि पता नहीं इन पर कभी मनुष्य का चरण पड़ा भी है या नहीं या अनन्तकाल से इन सूने बर्फ ढँके दर्रों में सिर्फ बर्फ के अन्धड़ हू-हू करते हुए बहते रहते हैं।

सूरज डूबने लगा और धीरे-धीरे ग्लेशियरों में पिघली केसर बहने लगी। बरफ कमल के लाल फूलों में बदलने लगी, घाटियाँ गहरी नीली हो गयीं। अँधेरा होने लगा तो हम उठे और मुँह-हाथ धोने और चाय पीने में लगे। पर सब चुपचाप थे, गुमसुम जैसे सबका कुछ छिन गया हो या शायद सबको कुछ ऐसा मिल गया हो, जिसे अन्दर-ही-अन्दर सहेजने में सब आत्मलीन हो अपने में डूब गये हों।

थोड़ी देर में चाँद निकला और हम फिर बाहर निकले....इस बार सब शान्त था। जैसे हिम सो रहा हो। मैं थोड़ा अलग आरामकुर्सी खींचकर बैठ गया। यह मेरा मन इतना कल्पनाहीन क्यों हो गया है? इसी हिमालय को देखकर किसने-किसने क्या-क्या नहीं लिखा और यह मेरा मन है कि एक कविता तो दूर, एक पंक्ति, हाय एक शब्द भी तो नहीं जागता।....पर कुछ नहीं, यह सब कितना छोटा लग रहा है इस हिम सम्राट् के समक्ष। पर धीरे-धीरे लगा कि मन के अन्दर भी बादल थे, जो छँट रहे हैं, कुछ ऐसा उभर रहा है, जो इन शिखरों की ही प्रकृति का है....। कुछ ऐसा, जो इसी ऊँचाई पर उठने की चेष्टा कर रहा है, ताकि इनसे इन्हीं के स्तर पर मिल सके। लगा, यह हिमालय बड़े भाई की तरह ऊपर चढ़ गया है और मुझे—छोटे भाई को—नीचे खड़ा हुआ कुण्ठित और लज्जित देखकर थोड़ा उत्साहित भी कर रहा है, स्नेहभरी चुनौती भी दे रहा है—'हिम्मत है? ऊँचे उठोगे?'

और सहसा सन्नाटा तोड़कर सेन रवीन्द्र की कोई पंक्ति गा उठा और जैसे तन्द्रा टूट गयी। और हम सक्रिय हो उठे—अदम्य शक्ति, उल्लास, आनन्द जैसे हम में झलक पड़ रहा था। सबसे अधिक खुश था सेन, बच्चों की तरह चंचल, चिड़ियों की तरह चहकता हुआ। बोला, "भाई साहब, हम तो वण्डरस्ट्रक हैं—कि यह भगवान् का क्या-क्या करतूत इस हिमालय में होता है।" इस पर हमारी हँसी मुश्किल में ठण्डी हो पायी थी कि अकस्मात् वह शीर्षासन करने लगा। पूछा गया तो बोला, "हम हर पर्सपेक्टिव हिमालय देखूँगा।" बाद में मालूम हुआ कि वह बम्बई (अब मुम्बई) की अत्याधुनिक चित्रशैली से थोड़ा नाराज है और कहने लगा, "ओ सब जीनियस लोग शीर का बल खड़ा होकर दुनिया को देखता है। इसी से मैं भी शीर का बल खड़ा होकर हिमालय देखता हूँ।"

दूसरे दिन घाटी में उतरकर 12 मील चलकर हम बैजनाथ पहुँचे, जहाँ गोमती बहती है। गोमती की उज्ज्वल जलराशि में हिमालय की बर्फीली चोटियों की छाया तैर रही थी। पता नहीं, उन शिखरों पर कब पहुँचूँ, कैसे पहुँचूँ, पर उस जल में तैरते हुए हिमालय से जी भरकर भेंटा, उसमें डूबा रहा।

आज भी उसकी याद आती है तो मन पिरा उठता है। कल ठेले के बर्फ को देखकर मेरे मित्र उपन्यासकार जिस तरह स्मृतियों में डूब गये, उस दर्द को समझता हूँ और जब ठेले पर हिमालय की बात कहकर हँसता हूँ तो वह उस दर्द को भुलाने का ही बहाना है। ये बर्फ की ऊँचाइयाँ बार-बार बुलाती हैं और हम हैं कि चौराहों पर खड़े ठेले पर लदकर निकलने वाली बर्फ को ही देखकर मन बहला लेते हैं। किसी ऐसे क्षण में ऐसे ही ठेलों पर लदे हिमालयों से घिरकर ही तो तुलसी ने कहा था—'कबहुँक हौं यहि रहिन रहौंगो'—मैं क्या कभी ऐसे भी रह सकूँगा, वास्तविक हिमशिखरों की ऊँचाइयों पर? और तब मन में आता है कि फिर हिमालय को किसी के हाथ सन्देशा भेज दूँ—"नहीं बन्धु....आऊँगा। मैं फिर लौट-लौटकर वहीं आऊँगा। उन्हीं ऊँचाइयों पर तो मेरा आवास है। वहीं मन रमता है, मैं करूँ तो क्या करूँ?"

● **धर्मवीर भारती**

# अभ्यास प्रश्न

## ● विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

**1. निम्नलिखित गद्यांशों में रेखांकित अंशों की व्याख्या और तथ्यात्मक प्रश्नों के उत्तर दीजिये—**

(क) ठेले पर बर्फ की सिलें लादे हुए बर्फ वाला आया। ठण्डे, चिकने, चमकते बर्फ से भाप उड़ रही थी। मेरे मित्र का जन्म-स्थान अल्मोड़ा है, वे क्षण भर उस बर्फ को देखते रहे, उठती हुई भाप में खोये रहे और खोये-खोये से ही बोले, "यही बर्फ तो हिमालय की शोभा है।" और तत्काल शीर्षक मेरे मन में कौंध गया, 'ठेले पर हिमालय'। पर आपको इसलिए बता रहा हूँ कि अगर आप नये कवि हों तो भाई, इसे ले जायँ और इस शीर्षक पर दो-तीन सौ पंक्तियाँ बेडौल-बेतुकी लिख डालें—शीर्षक मौजूँ है, और अगर नयी कविता से नाराज हों, सुललित गीतकार हों तो भी गुंजाइश है, इस बर्फ को डाँटें, "उतर आओ। ऊँचे शिखर पर बन्दरों की तरह क्यों चढ़े बैठे हो? ओ नये कवियो! ठेले पर लादो। पान की दुकानों पर बिको।"

प्रश्न (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) हिमालय की शोभा क्या है?

(ख) सच तो यह है कि सिर्फ बर्फ को बहुत निकट से देख पाने के लिए ही हम लोग कौसानी गये थे। नैनीताल से रानीखेत और रानीखेत से मझकाली के भयानक मोड़ों को पार करते हुए कोसी। कोसी से एक सड़क अल्मोड़ा चली जाती है, दूसरी कौसानी। कितना कष्टप्रद, कितना सूखा और कितना कुरूप है वह रास्ता। पानी का कहीं नाम-निशान नहीं, सूखे भूरे पहाड़, हरियाली का नाम नहीं। ढालों को काटकर बनाये हुए टेढ़े-मेढ़े खेत, जो थोड़े-से हों तो शायद अच्छे भी लगें, पर उनका एकरस सिलसिला बिल्कुल शैतान की आँत मालूम पड़ता है।

प्रश्न (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) बर्फ को पास से देखने के लिए लेखक कहाँ गया?

(ग) कौसानी के अड्डे पर जाकर बस रुकी। छोटा-सा, बिल्कुल उजड़ा-सा गाँव और बर्फ का तो कहीं नाम-निशान नहीं। बिल्कुल ठगे गये हम लोग। कितना खिन्न था मैं। अनखाते हुए बस से उतरा कि जहाँ था वहीं पत्थर की मूर्ति-सा स्तब्ध खड़ा रह गया। कितना अपार सौन्दर्य बिखरा था, सामने की घाटी में। इस कौसानी की पर्वतमाला ने अपने अंचल में यह जो कत्यूर की रंग-बिरंगी घाटी छिपा रखी है; इसमें किन्नर और यक्ष ही तो वास करते होंगे। पचासों मील चौड़ी यह घाटी, हरे मखमली कालीनों जैसे खेत, सुन्दर गेरू की शिलाएँ काटकर बने हुए लाल-लाल रास्ते, जिनके किनारे-किनारे सफेद-सफेद पत्थरों की कतार और इधर-उधर से आकर आपस में उलझ जानेवाली बेलों की लड़ियों-सी नदियाँ। मन में बेसाख्ता यही आया कि इन बेलों की लड़ियों को उठाकर कलाई में लपेट लूँ, आँखों से लगा लूँ।

प्रश्न (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) कौन-सी घाटी थी, जिसमें अनन्त सौन्दर्य बिखरा पड़ा था?

(घ) हिमालय की शीतलता माथे को छू रही है और सारे संघर्ष, सारे अन्तर्द्वन्द्व, सारे ताप जैसे नष्ट हो रहे हैं। क्यों पुराने साधकों ने दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों को ताप कहा था और उसे नष्ट करने के लिए वे क्यों हिमालय जाते थे, यह पहली बार मेरी समझ में आ रहा था। और अकस्मात् एक दूसरा तथ्य मेरे मन के क्षितिज पर उदित हुआ। कितनी, कितनी पुरानी है यह हिमराशि। जाने किस आदिम काल से यह शाश्वत, अविनाशी हिम इन शिखरों पर जमा हुआ। कुछ विदेशियों ने इसीलिए इस हिमालय की बर्फ को कहा है—चिरन्तन हिम।

प्रश्न (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) कुछ विदेशियों ने हिमालय की बर्फ को चिरन्तन हिम क्यों कहा है?

(ङ) सूरज डूबने लगा और धीरे-धीरे ग्लेशियरों में पिघली केसर बहने लगी। बरफ कमल के लाल फूलों में बदलने लगी, घाटियाँ गहरी नीली हो गयीं। अँधेरा होने लगा तो हम उठे और मुँह-हाथ धोने और चाय पीने में लगे। पर सब चुपचाप थे, गुमसुम जैसे सबका कुछ छिन गया हो या शायद सबको कुछ ऐसा मिल गया हो, जिसे अन्दर-ही-अन्दर सहेजने में सब आत्मलीन हो अपने में डूब गये हों।

प्रश्न (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) किस समय बर्फ कमल के लाल फूलों में बदलती-सी प्रतीत होने लगी?

(च) आज भी उसकी याद आती है तो मन पिरा उठता है। कल ठेले के बर्फ को देखकर मेरे मित्र उपन्यासकार जिस तरह स्मृतियों में डूब गये, उस दर्द को समझता हूँ और जब ठेले पर हिमालय की बात कहकर हँसता हूँ तो वह उस दर्द को भुलाने का ही बहाना है। ये बर्फ की ऊँचाइयाँ बार-बार बुलाती हैं और हम हैं कि चौराहों पर खड़े ठेले पर लदकर निकलने वाली बर्फ को ही देखकर मन बहला लेते हैं। किसी ऐसे क्षण में ऐसे ही ठेलों पर लदे हिमालयों से घिरकर ही तो तुलसी ने कहा था—'कबहुँक हौं यहि रहिन रहौंगो'—मैं क्या कभी ऐसे भी रह सकूँगा, वास्तविक हिमशिखरों की ऊँचाइयों पर?

प्रश्न (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।

(ii) रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।

(iii) किसने हिमालय के शिखरों पर रहने की इच्छा व्यक्त की है?

2. धर्मवीर भारती की जीवनी एवं कृतियों का उल्लेख कीजिए।
3. धर्मवीर भारती के साहित्यिक अवदान एवं भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
4. धर्मवीर भारती के जीवन-परिचय एवं साहित्यिक योगदान पर प्रकाश डालिए।

## ● लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कौसानी की यात्रा में नैनीताल से कोसी तक लेखक का सफर कैसा रहा?
2. कोसी के आगे जो बदलाव आया उसका मुख्य कारण क्या था?
3. कौसानी पहुँचने पर पहले लेखक को अवाक्, मूर्ति-सा स्तब्ध कर देनेवाला कौन-सा दृश्य दिखायी दिया?
4. कत्यूर घाटी के पार बादलों की ओट के बीच से दिखता हिमालय का एक शृंग उसे कैसा लगा?
5. हिम-शृंग के क्षणिक दर्शन का उस पर क्या प्रभाव हुआ?
6. पूरी हिम-शृंखला देखने पर लेखक के मन में कैसे भाव उदित हुए?
7. रात होने पर जब चाँद दिखायी दिया तब लेखक को क्यों लगने लगा कि जैसे उसका मन कल्पनाहीन हो गया हो?
8. बैजनाथ पहुँच कर गोमती में स्नान करते हुए लेखक के मन में हिमालय के प्रति कैसे भाव जगते हैं?

## ● अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. धर्मवीर भारती की दो रचनाओं के नाम लिखिए।
2. धर्मवीर भारती किस युग के लेखक हैं।
3. धर्मवीर भारती का जन्म कब हुआ था?
4. हिमालय की शोभा क्या है?

## ● व्याकरण बोध

1. **निम्नलिखित में 'समास-विग्रह' कीजिए और समास का नाम भी लिखिए—**
   हिमालय, शीर्षासन, जलराशि, पर्वतमाला, तन्द्रालस, प्रसन्नवदन।
2. इस पाठ के आधार पर धर्मवीर भारती की भाषा-शैली पर एक लेख लिखिए।
3. **निम्नलिखित शब्दों से प्रत्यय अलग कीजिए—**
   सुहावनापन, कष्टप्रद, शीतलता।

## ● आन्तरिक मूल्यांकन

1. इस यात्रावृत्त में लेखक ने हिमालय के जिन-जिन रूपों का चित्र खींचा है, उन्हें अपने शब्दों में लिखिए।
2. हिमालय के सुन्दर दृश्य का एक पोस्टर तैयार कीजिए।

●●●